|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 2: सांख्ययोग

3/5 (श्लोक 23-47), शनिवार, 27 मई 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/xqly-FDUljU

नैष्कर्म्य एवं निष्काम कर्म की तुलना

श्रीहनुमान चालीसा पाठ, मङ्गलाचरण और दीप प्रज्वलन पश्चात् विवेचन सत्र आरम्भ हुआ। भगवान की अतिशय कृपा से हम सबका भाग्योदय हुआ है कि श्रीगीता जी को पढ़ने, आत्मसात् करने, जीवन में लाने, उसके द्वारा प्रकाश फैलाने, और अपने जीवन को उपकृत करने में हम लग गए हैं। पूर्वजन्मों के सद्कर्म, पूर्वजों के संस्कार और सन्तों के आशीर्वाद से हमारा सद्भाग्य जाग्रत हुआ है।

पूज्य स्वामी जी का आदेश है, कि प्रधान कर्त्तव्य को प्रधानता देनी चाहिए। श्रीगीता जी की सेवा करना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। तेईस से अट्ठाइस मई तक, पाञ्च दिवस राष्ट्रीय कार्यकर्ता सम्मेलन सङ्गमनेर में हुआ।

लखनऊ गीता परिवार द्वारा सङ्कलित और पुणे गीता परिवार द्वारा प्रकाशित-

***संस्कार पथ दिग्दर्शिका* पुस्तिका का विमोचन भी हुआ। वर्ष भर चलने वाले बाल कार्यक्रम इसमें शामिल हैं। सभी गीता सेवी जन इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं।**

इसके उपरान्त आज का विवेचन सत्र आरम्भ हुआ।

2.23

नैनं(ञ्) छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं(न्) दहति पावकः।
न चैनं(ङ्) क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥2.23॥

शस्त्र इस (शरीरी) को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु (इसको) सुखा नहीं सकती।

विवेचन - "**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**" की बात कहने के बाद श्रीभगवान कहते हैं कि प्रकृति के जिन पाञ्च तत्वों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है, उनमें से किसी का भी प्रभाव आत्मतत्त्व पर नहीं पड़ता। पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु चार तत्त्वों के प्रभावों का उल्लेख परमात्मा ने किया है। **आकाश तत्त्व में क्रिया नहीं है, इसलिए उसका उल्लेख नहीं है।**

2.24

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम्, अक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः(स्) सर्वगतः(स्) स्थाणु:(र्), अचलोऽयं(म्) सनातनः॥2.24॥

यह शरीरी काटा नहीं जा सकता, यह जलाया नहीं जा सकता, (यह) गीला नहीं किया जा सकता और (यह) सुखाया भी नहीं जा सकता। (कारण कि) यह नित्य रहने वाला, सबमें परिपूर्ण, अचल, स्थिर स्वभाव वाला (और) अनादि है।

विवेचन - आत्म तत्त्व के विषय में चार बातें भगवान कह रहे हैं। **यह आत्मा नित्य है** अर्थात् हमेशा से है। पहली बार कब थी? कब तक रहेगी? ऐसे विचार निरर्थक हैं। सदा से है, जब तक शरीर के जन्म-मरण में फँसी हुई है, तब तक बन्धन में है। शरीर के जन्म मरण से बाहर आएगी तो मुक्त हो जाएगी। **जीवात्मा से आत्मा बनने को ही मुक्ति या कैवल्य कहते हैं।**

2.25

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम्, अविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं(वँ) विदित्वैनं(न्), नानुशोचितुमर्हसि॥2.25॥

यह देही प्रत्यक्ष नहीं दीखता, यह चिन्तन का विषय नहीं है (और) यह निर्विकार कहा जाता है। अतः इस देही को ऐसा जानकर शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन - आत्म तत्त्व की दूसरी विशेषता है- अव्यक्त होना।

इसे किसी भी वर्णन, किसी उदाहरण या उपमा से व्यक्त नहीं किया जा सकता। जो अव्यक्त है, वह अचिन्त्य भी है। उसका चिन्तन या कल्पना नहीं की जा सकती। मिस्त्री शब्द से हम परिचित हैं। किस्त्री शब्द से हम अपरिचित हैं। हम कुछ भी कल्पना कर लें। सही में कुछ भी नहीं होगा। **यह तीसरी विशेषता है।**

आत्म तत्त्व की चौथी विशेषता है- अविकारी होना।
आत्मा नित्य, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविकारी है,

इसलिए तुम्हें इसके लिए शोक करने की आवश्यकता नहीं है।

2.26

अथ चैनं(न्) नित्यजातं(न्), नित्यं(वँ) वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं(म्) महाबाहो, नैवं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.26॥

हे महाबाहो ! अगर (तुम) इस देही को नित्य पैदा होनेवाला अथवा नित्य मरने वाला भी मानो, तो भी तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन - **गीता समस्त आग्रहों से मुक्त है, इसीलिए सर्वमान्य है।** गीता के प्रति सबका समान आदर है। किसी ग्रन्थ के प्रति कोई समुदाय मान्यता रखता है, तो दूसरा समुदाय उसके प्रति न रखकर किसी अन्य विशेष ग्रन्थ के प्रति मान्यता रखता है। यहाँ भगवान की दृष्टि आग्रह रहित है। मैं जो कह रहा हूँ, वही सही है ऐसा आग्रह भगवान नहीं करते। भगवान की दृष्टि उदार है। आत्मा की चार विशेषताओं को श्रीभगवान बलपूर्वक नहीं मनवाते।

वे कहते हैं कि यदि तुम इस आत्मा को जीने मरने वाला मानते हो, तो **जो जन्मा है, वह मरेगा। जो मरा है, वह जन्म लेगा, इसे टाला नहीं जा सकता।** इसलिए शोक योग्य नहीं है।

आए हैं, सो जाएँगे;
राजा रङ्क फकीर।

जो बात नियन्त्रण में है, और जो बात नियन्त्रण में नहीं है, उसमें भेद करना आना चाहिए।

Stephen R Covey की पुस्तक है -

The seven habits of highly Effective people

इसका हिन्दी अनुवाद है -

अति प्रभावकारी लोगों की सात आदतें।

चिन्तन परिधि के भीतर वे क्रिया कलाप होने चाहियें जिन पर हमारा नियन्त्रण है।

चिन्तन परिधि के बाहर-

वे क्रिया कलाप जिन पर हमारा नियन्त्रण नहीं है। उनकी चिन्ता करने से भी कुछ राहत नहीं मिल सकती। हम अपना पड़ोसी नहीं बदल सकते। बेटा नहीं बदल सकते, पुत्रवधु नहीं बदल सकते, माता-पिता नहीं बदल सकते। जो हैं, जैसे हैं वही स्वीकार करना होगा। श्रीभगवान ने मृत्यु को अपरिहार्य कहा है।

2.27

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु:(र्), ध्रुवं(ञ्) जन्म मृतस्य च।तस्मादपरिहार्येऽर्थे, न त्वं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.27॥

कारण कि पैदा हुए की जरूर मृत्यु होगी और मरे हुए का जरूर जन्म होगा। अतः (इस जन्म-मरण रूप परिवर्तन के प्रवाह का) निवारण नहीं हो सकता। (अत:) इस विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन - प्रकट-अप्रकट क्रिया का आरम्भ होगा, अन्त होगा। पदार्थ का जन्म होगा तो मृत्यु भी होगी। जड़ पदार्थ अपरा प्रकृति के अङ्ग हैं। शरीरधारी परा और अपरा का मिश्रण हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र सबकी आयु निर्धारित है। सबका अन्त निश्चित है।

इस सन्दर्भ में कबीरदास जी का बहुत सुन्दर भजन है -

https://drive.google.com/file/d/14DQ5IEa0AfY-S4CEGvQUp2-z1jzLDzvA/view?usp=drivesdk

अंग्रेजी की कहावत भी है - As sure as death अर्थात मृत्यु को टाला नहीं जा सकता। अगर इस जीवन में कोई बात निश्चित है तो वह केवल मृत्यु है।

कब मरेंगे बस यह पता नहीं। मरने के दो कारक हैं। हमें दोनों ही नहीं मालूम हैं।

पहला कारक है - निर्धारित आयु। Expiry date, जीवधारियों की मृत्यु की अवधि ब्रह्मा जी निर्धारित करते हैं।

दूसरा कारण है - शरीर का रख-रखाव। युक्त आहार, युक्त विहार।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय।

नई कार की अवधि दस वर्ष थी। सड़क दुघर्टना में इन्जन नष्ट हो गया। अब तो नहीं चलेगी। शरीर की अच्छी देखभाल की, तो सम्भवतः अस्सी वर्ष से बढ़कर नब्बे हो जाए। नशे के गुलाम हो गए, तो शरीर जल्दी नष्ट हो गया, साठ में ही चले गए, ऐसा होना स्वाभाविक है।

2.28

अव्यक्तादीनि भूतानि, व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव, तत्र का परिदेवना॥2.28॥

हे भारत ! सभी प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे (और) मरने के बाद अप्रकट हो जायँगे, केवल बीच में ही प्रकट दीखते हैं। (अतः) इसमें शोक करने की बात ही क्या है?

विवेचन - आत्म तत्त्व का मूल स्वभाव शरीर धारण करना नहीं है। न तो पहले शरीर था, न बाद में शरीर है, केवल बीच की कुछ अवधि शरीर है। फिर अपने कर्मों के अनुसार शरीर मिलता है। इसके लिए किसी भी तरह की चिन्ता क्यों?

2.29

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्,
आश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः(श्) शृणोति,
श्रुत्वाप्येनं(वँ) वेद न चैव कश्चित्॥2.29॥

कोई इस शरीरी को आश्चर्य की तरह देखता (अनुभव करता) है और वैसे ही दूसरा (कोई) (इसका) आश्चर्य की तरह वर्णन करता है तथा अन्य (कोई) इसको आश्चर्य की तरह सुनता है और इसको सुनकर भी कोई नहीं जानता।अर्थात यह दुर्विज्ञेय है।

विवेचन - आत्म तत्त्व इतना गहन है कि कोई विरले महापुरुष ही इसे समझ सकते हैं। **सबको समझ में नहीं आता। वे तो शरीर के जन्म-मृत्यु को ही आत्मतत्त्व मान लेते हैं।** कोई आधिकारिक महापुरुष ही इसका वर्णन कर सकता है।

2.30

देही नित्यमवध्योऽयं(न्), देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि, न त्वं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.30॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! सबके देह में यह देही नित्य ही अवध्य है। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियों के लिये अर्थात् किसी भी प्राणी के लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन- आत्मा सदा ही अवध्य है।

अवध्य के दो भाव हैं-

पहला मत मारो: मारना नहीं चाहिए। गाय अवध्य है। ब्राह्मण अवध्य है। उन्हें मत मारो।

दूसरा यह कि मारने का सामर्थ्य न होना: मारना चाहो, तो भी नहीं मार सकते।

आत्मा अवध्य है, हम उसे नहीं मार सकते।

2.31

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य, न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्, क्षत्रियस्य न विद्यते॥2.31॥

और अपने क्षात्रधर्म को देखकर भी (तुम्हें) विकम्पित अर्थात् कर्तव्य-कर्म से विचलित नहीं होना चाहिये क्योंकि धर्ममय युद्ध से बढ़कर क्षत्रिय के लिये दूसरा कोई कल्याणकारक कर्म नहीं है।

विवेचन - **श्लोक इकत्तीस से सैंतालीस में कर्त्तव्य कर्म की बात श्रीभगवान कहते हैं।**

क्षत्रिय के लिए युद्ध करना कर्त्तव्य है। उदाहरण के लिए अगर तुम अपने राजा की ओर से युद्ध के लिए नियुक्त हो तो अपने धर्म को भी एक तरफ रखकर आपको युद्ध करना ही होगा। अगर राष्ट्रपति जी युद्ध की घोषणा कर दें, तो कोई भारतीय सैनिक **अहिंसा परमो धर्मः** कहकर युद्ध से विमुख नहीं हो सकता। शत्रु सेना को मारने से, मना नहीं कर सकता। उसे इसी कार्य के लिए वेतन दिया जाता है। यही उसका कर्त्तव्य है।

एक राजा प्रातः भ्रमण पर बाग में गया। बाग के पहरेदार ने छलाँग लगाकर, राजा को भ्रमण पथ से दूर धकेल दिया। राजा ने देखा, अचानक पीछे से एक हाथी बेकाबू होकर भ्रमण पथ पर दौड़ पड़ा। दूर गिर पड़ने से, राजा की जान बच गई थी। राजा ने जान बचाने पर पहरेदार को बहुमूल्य आभूषण दिए और पूछा - तुम्हें कैसे पता कि हाथी बेकाबू होकर दौड़ पड़ेगा? पहरेदार ने कहा कि रात स्वप्न में मैंने ऐसी घटना देखी थी। राजा ने उसे सेवा मुक्त होने का आदेश दिया। उस पहरेदार द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर राजा ने कहा, "तुम्हारा कर्त्तव्य जागकर पहरेदारी करना है, तुमने पहरेदारी के कर्त्तव्य का पालन निष्ठा से नहीं किया। रात को सोते हो, इसलिए तुम्हें सेवा से मुक्त किया जाता है।" कर्त्तव्य कर्म की अवहेलना करने को किसी तरह से भी उचित नहीं ठहराया जा सकता।

2.32

यदृच्छया चोपपन्नं(म्), स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः(फ्) पार्थ, लभन्ते युद्धमीदृशम्॥2.32॥

अपने-आप प्राप्त हुआ (युद्ध) खुला हुआ स्वर्ग का दरवाजा भी है। हे पृथानन्दन ! (वे) क्षत्रिय बड़े सुखी (भाग्यशाली) हैं (जिनको) ऐसा युद्ध प्राप्त होता है।

विवेचन - क्षत्रिय का धर्म है युद्ध करना। श्रीभगवान अर्जुन को कहते हैं कि यदि तुम युद्ध करते मारे गए, तो स्वर्ग के द्वार तुम्हारे लिए खुले रहेंगे।

2.33

अथ चेत्त्वमिमं(न्) धर्म्यं(म्), सङ्ग्रामं(न्) न करिष्यसि।
ततः(स्) स्वधर्मं(ङ्) कीर्तिं(ञ्) च, हित्वा पापमवाप्स्यसि॥2.33॥

अब अगर तू यह धर्ममय युद्ध नहीं करेगा, तो अपने धर्म और कीर्ति का त्याग करके पाप को प्राप्त होगा।

विवेचन - श्रीभगवान कहते हैं कि स्वधर्म का अच्छी तरह पालन करने वाले को कीर्ति मिलती है। धर्म का पालन न करने वाले को इस लोक में अपयश मिलता है और कर्त्तव्य पालन न करने पर परलोक में भी पाप के भागीदार बनते हैं।

2.34

अकीर्तिं(ञ्) चापि भूतानि, कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्ति:(र्), मरणादतिरिच्यते॥2.34॥

और सब प्राणी भी तेरी सदा रहने वाली अपकीर्ति का कथन अर्थात निंदा करेंगे। (वह) अपकीर्ति सम्मानित मनुष्य के लिये मृत्यु से भी बढ़कर दुःखदायी होती है।

विवेचन - युद्ध के लिए मना करने पर श्रीभगवान अर्जुन को कहते हैं कि सब लोग बहुत काल तक कहेंगे कि अर्जुन युद्ध से भाग गया था। वह तो कायर था। सामान्य व्यक्ति की अपकीर्ति हो जाए, तो कोई बात नहीं। महान और यशस्वी पुरुष के लिए अपकीर्ति बहुत दुःखदायी होती है। **जिसकी जितनी अधिक प्रतिष्ठा; उसकी अपकीर्ति उसके लिए उतनी अधिक दुःखदायी होती है।**

रावण विद्वान और पराक्रमी था। उसे आज तक बार-बार जलाया जाता है। पाप एक बार किया। हजारों वर्षों से भोग रहा है। रावण का नाम अपशब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। माननीय पुरुषों के लिए, अपकीर्ति बहुत बड़ी होती है। रावण महान था परन्तु जब उसने सीता जी का अपहरण, ऋषियों की प्रताड़ना और अपनी बहू से दुराचरण जैसे घृणित दुष्कर्म किए, तभी से हजारों वर्षों से उसे जलाया जाता है।

2.35

भयाद्रणादुपरतं(म्), मंस्यन्ते त्वां(म्) महारथाः।
येषां(ञ्) च त्वं(म्) बहुमतो, भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥2.35॥

तथा महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से हटा हुआ मानेंगे। जिनकी (धारणा में) तू बहुमान्य हो चुका है, (उनकी दृष्टि में) (तू) लघुता को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन - श्रीभगवान अर्जुन को कहते हैं कि सम्मानित होकर अब तुम लघुता को प्राप्त करने की बातें करते हो। जो तुम्हारे नाम से काँपते थे, ऐसे छोटे-छोटे योद्धा भी युद्ध से भाग जाने पर तुम्हारा उपहास करेंगे।

2.36

अवाच्यवादांश्च बहून्, वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं(न्), ततो दुःखतरं(न्) नु किम्॥2.36॥

तेरे शत्रु लोग तेरी सामर्थ्य की निन्दा करते हुए बहुत से न कहने योग्य वचन भी कहेंगे। उससे बढ़कर और दुःख की बात क्या होगी?

विवेचन - एक स्तर के बाद, मनुष्य धन और परिवार से भी ऊब जाता है, और कीर्ति का सङ्कलन करना चाहता है। सामर्थ्यवान के लिए अपनी निन्दा सुनना कष्टदाई होता है।

शास्त्रों में निन्दा करने वाले को पाप का भागीदार बताया गया है। एक सत्कर्मी राजा का सौतेला भाई सदैव राजा से ईर्ष्या और निन्दा करते हुए अपकार में लगा रहता था। राजा ने एक बार यज्ञ किया। भोजन की तैयारी चल रही थी। उसी समय आकाश में उड़ती चील की चोंच में दबा सर्प छूटकर भोजन में गिर गया। विषाक्त भोजन खाकर अनेक ब्राह्मण और सन्त महात्मा परलोक सिधार गए। राजा के सौतेले भाई ने अवसर का लाभ उठाकर, राजा की अपकीर्ति की। इस निन्दा के दु:ख से राजा ने प्राण त्याग दिए। यमलोक में चित्रगुप्त जी ने लेखा-जोखा जाँचकर बताया। धर्मराज जी ने सबकी मृत्यु के लिए निन्दा करने वाले को पाप का भागीदार ठहराया। हम अनजाने में ही रस में पड़कर निन्दा कर बैठते हैं। निन्दा करने से बचना है।

कबीर दास जी कहते हैं कि:-

निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी, बिन साबुने, निर्मल करे सुभाय।।

अर्थ : जो हमारी निन्दा करता है, उसे अपने अधिक से अधिक पास ही रखना चाहिए। वह तो बिना साबुन और पानी के हमारी कमियाँ बता कर हमारे स्वभाव को साफ़ करता है।

इसके साथ ही सही कार्य में निन्दा की परवाह भी नहीं करनी चाहिए। नोटों का विमुद्रीकरण किया तो, प्रधानमन्त्री जी ने किसी की निन्दा की परवाह नहीं की। देश का हित है, तो करना उचित है। निन्दा और खुजली दोनों के परिणाम घातक हैं, फिर भी मन वहीं लगता है। माननीय पुरुषों के लिए निन्दा मृत्यु से भी बढ़कर है। निन्दा सुनना और करना, दोनों पाप हैं। अपनी निन्दा हो, तो दूसरे को दोषी न मानें। अपने कर्म और अपने पाप को ही उसका कारण जानें। उसे सुधारने के लिए, उनका उपकार मानें। दो लोगों की निन्दा हो रही हो और बात सही भी हो, तो भी उसमें हस्तक्षेप न करें।

फोर्ड कम्पनी जब बिकनेवाली थी तो रतन टाटा उसे खरीदने का प्रस्ताव लेकर कम्पनी के मालिक के पास गए। फोर्ड के मालिक ने आटोमोबाइल के क्षेत्र में टाटा की अनुभवहीनता की खिल्ली उड़ाई। टाटा ने उस उपहास का सकारात्मक आश्रय ले कर सबसे सस्ती नैनो कार बनाई। ऑटोमोबाइल (वाहन) क्षेत्र में अपने पाँव जमाकर अपनी धाक जमाई और फिर फोर्ड का अधिग्रहण किया। **निन्दा को सकारात्मकता से लेने का परिणाम हुआ कि टाटा वाहन क्षेत्र में भी अग्रणी कम्पनी बन गई।** निन्दा को हमेशा सकारात्मकता से लेते हुए जीवन में अग्रसर होना ही मनुष्य जीवन का धर्म है।

2.37

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं(ञ्), जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः॥2.37॥

अगर (युद्ध में तू) मारा जायगा (तो) (तुझे) स्वर्ग की प्राप्ति होगी (और) अगर (युद्ध में तू) जीत जायगा (तो) पृथ्वी का राज्य भोगेगा। अतः हे कुन्तीनन्दन! (तू) युद्ध के लिये निश्चय करके खड़ा हो जा।

विवेचन - श्रीभगवान अर्जुन को कहते हैं कि तुम्हें राज्य सुख नहीं चाहिए, तो भी क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए अगर तुम वीरगति को प्राप्त हुए, तो स्वर्ग मिलेगा। युद्ध जीतने पर राज्य का भोग करोगे। इसलिए तुम युद्ध का निश्चय करके खड़े हो जाओ।

2.38

सुखदुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैवं(म्) पापमवाप्स्यसि॥2.38॥

जय-पराजय, लाभ-हानि (और) सुख-दुःख को समान करके फिर युद्ध में लग जा। इस प्रकार (युद्ध करने से) (तू) पाप को प्राप्त नहीं होगा।

विवेचन - श्रीभगवान छः सूत्र बताते हैं- हे अर्जुन! यदि तुम्हें राज्य सुख की लालसा नहीं है, तो सुख-दु:ख, लाभ-अलाभ, जय-पराजय इन छः वृत्तियों में समता को धारण करो। इससे तुम्हें पाप नहीं लगेगा और तुम पाप मुक्त हो जाओगे।

2.39

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये, बुद्धिर्योगे त्विमां(म्) शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ, कर्मबन्धं(म्) प्रहास्यसि॥2.39॥

हे पार्थ! यह समबुद्धि तेरे लिए (पहले) सांख्ययोग में कही गयी और (अब तू) इसको कर्मयोग के विषय में सुन; जिस समबुद्धि से युक्त हुआ (तू) कर्मबन्धन का त्याग कर देगा।

विवेचन - श्लोक उन्तालीस से श्रीभगवान महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं और कर्मयोग का वर्णन आरम्भ करते हैं।

हे अर्जुन! यह बुद्धि तुम्हें ज्ञानयोग के लिए जैसी कही गई है, वैसी बुद्धि अब कर्मयोग के लिए सुनो। इस बुद्धि में लगा हुआ, तू कर्म बन्धन को त्याग देगा।

2.40

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्॥2.40॥

मनुष्यलोक में इस समबुद्धि रूप धर्म के आरम्भ का नाश नहीं होता (तथा इसके अनुष्ठान का) उलटा फल (भी) नहीं होता (और इसका) थोड़ा सा भी (अनुष्ठान) (जन्म-मरण रूप) महान भय से रक्षा कर लेता है।

विवेचन - कर्मयोग के बीज का नाश नहीं है। श्रीभगवान कहते हैं कि कर्मयोग का पालन करने से जन्म-मृत्यु के चक्र **पुनरपि जननं पुनरपि मरणं** से मुक्त हो जाते हैं।

अर्जुन ने ज्ञान के प्रश्न किए, तो भगवान ने ज्ञानयोग बताया। अब भगवान कहते हैं कि कर्मयोग में लगो।

2.41

व्यवसायात्मिका बुद्धिः(र्), एकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च, बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥2.41॥

हे कुरुनन्दन! इस (समबुद्धि की प्राप्ति) के विषय में निश्चयवाली बुद्धि एक ही (होती है)। जिनका एक निश्चय नहीं है, ऐसे मनुष्यों की बुद्धियाँ अनन्त और बहुशाखाओं वाली ही (होती हैं)।

विवेचन - कर्मयोग में लगे रहने वालों की बुद्धि एक ही होती है। सकाम कर्म करने वालों की अनेक प्रकार की बुद्धि होती है। निष्काम कर्म में कोई गड़बड़ नहीं होती। सकाम कर्म में गड़बड़ होती है।

तीन बातें हैं -

काम के बदले काम।
काम के बदले दाम।
काम के बदले नाम।

हम चाहते हैं, कि हमारे काम के बदले कोई हमारा काम करे। या फिर काम के बदले हमें धन मिले, या हमारे काम के लिए हमारी प्रशंसा हो। बनिए के बही खाते का हिसाब और बैंक में जमा धन का खाता तो चलता रहेगा। जो भी किया, उसका फल मिलेगा अवश्य, भले कभी भी मिले। चित्रगुप्त का खाता कभी बन्द नहीं होता।

धर्म का छोटा सा कार्य भविष्य में महान सङ्कटों से बचा लेता है। किसी से कुछ लिया है, देना तो पड़ेगा। सेवा के बदले

सेवा दे सकते हैं। लर्न गीता में गीता सेवी बनकर सेवा करके अपने ऋणों से मुक्त हो सकते हैं।

सकाम कर्म वालों की बुद्धि अनेक प्रकार की होती है। कभी किसी देवी, देवता से मन्नत माँगी, कभी किसी मजार, पीर की चौखट पर, कभी गिरिजाघर में, कभी कोई तन्त्र-यन्त्र। सकाम कर्मयोगी निरन्तर किसी एक उपाय में स्थिर नहीं रहता। सकाम कर्म में किसी तरह की बुराई नहीं लेकिन हमारी वृत्ति ऐसी नहीं बननी चाहिए।

2.42, 2.43, 2.44

यामिमां(म्) पुष्पितां(वँ) वाचं(म्), प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः(फ्) पार्थ, नान्यदस्तीति वादिनः॥2.42॥

कामात्मानः(स्) स्वर्गपरा, जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां(म्), भोगैश्वर्यगतिं(म्) प्रति॥2.43॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां(न्), तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः(स्), समाधौ न विधीयते॥2.44॥

हे पृथानन्दन ! जो कामनाओं में तन्मय हो रहे हैं, स्वर्ग को ही श्रेष्ठ मानने वाले हैं, वेदों में कहे हुए सकाम कर्मों में प्रीति रखने वाले हैं, (भोगों के सिवाय) और कुछ है ही नहीं - ऐसा कहने वाले हैं, (वे) अविवेकी मनुष्य इस प्रकार की जिस पुष्पित (दिखाऊ शोभायुक्त) वाणी को कहा करते हैं, (जो कि) जन्मरूपी कर्मफल को देने वाली है (तथा) भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये बहुत सी क्रियाओं का वर्णन करने वाली है। (2.42-2.43)
उस पुष्पित वाणी से जिसका अन्तःकरण हर लिया गया है अर्थात् भोगों की तरफ खिंच गया है (और जो) भोग तथा ऐश्वर्य में अत्यन्त आसक्त हैं, (उन मनुष्यों की) परमात्मा में निश्चय वाली बुद्धि नहीं होती।

विवेचन - भोगों में आसक्ति रखने वाले, वेदों के सकाम कर्म में बुद्धि लगाने वाले, स्वर्ग के सुखों को सर्वोपरि समझने वाले अविवेकी जन हैं। जिनकी वृत्ति भोगों, ऐश्वर्यों, कामनाओं में लग गई, वे सिर्फ ऐसा ही करते रहते हैं।

कोई पूछेगा, गीता पढने से क्या मिलेगा? कुछ धन-लाभ होगा क्या? कई लोगों का ऐसा मानना भी होता है कि अगर किसी तरह का धन लाभ नहीं है तो इसे हम बाद में वृद्धावस्था में करेंगे क्योंकि अब हम जहाँ सेवा करते हैं, वहाँ से कारोबार में दस लाख का लाभ हुआ है।

सकाम बुद्धि वाले को परमात्मा विषयक बात अच्छी नहीं लगती। जिसकी बुद्धि परमात्मा में लगती है, उसकी सकाम वृत्ति धीरे-धीरे घटने लगती है। आवश्यकता होने पर, परमात्मा से माँगना बुरा नहीं है, सामयिक देवताओं का उपयोग तो हमें करना ही चाहिए। केवल माँगने के लिए परमात्मा को याद करना, ऐसी सकाम वृत्ति में नहीं लगे रहना है, बस इसका ध्यान अवश्य रखना है।

2.45

त्रैगुण्यविषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो, निर्योगक्षेम आत्मवान्॥2.45॥

वेद तीनों गुणों के कार्य का ही वर्णन करने वाले हैं; हे अर्जुन! (तू) तीनों गुणों से रहित हो जा, राग द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित (हो जा), (निरन्तर) नित्य वस्तु परमात्मा में स्थित (हो जा), योगक्षेम की चाहना भी मत रख (और) परमात्मपरायण (हो जा)।

विवेचन - श्रीभगवान कृपा पूर्वक वह बात बता रहे हैं, जो शास्त्रों में भी शीघ्रता से नहीं मिलती। श्रीभगवान कहते हैं कि तुम

सकाम बुद्धि में मत लगो और द्वन्द्वों से मुक्त हो जाओ। तुम आसक्ति हीन हो जाओ। नित्यस्वरूप परमेश्वर में स्थित रहो। अपने योगक्षेम का दायित्व अपने परमात्मा पर छोड़ दो और अगर तुम ऐसा करोगे तो फिर क्या होगा आओ मैं तुम्हें आगे बताता हूँ।

2.46

यावानर्थ उदपाने, सर्वतः(स्) सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु, ब्राह्मणस्य विजानतः॥2.46॥

सब तरफ से परिपूर्ण महान जलाशय के (प्राप्त होने पर) छोटे गड्ढों में भरे जल में (मनुष्य का) जितना प्रयोजन (रहता है) अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता, (वेदों और शास्त्रों को) तत्त्व से जानने वाले ब्रह्मज्ञानी का सम्पूर्ण वेदों में उतना (ही प्रयोजन रहता है) अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता।

विवेचन - श्रीभगवान कहते हैं कि अगर चारों ओर पानी प्राप्त हो तो छोटे जलाशय का क्या प्रयोजन रह जाता है। जिस तरह घर में कुआँ या नलकूप लगा हो तो, छोटी-छोटी बाल्टियों में पानी क्यों भरना है? जिसके घर सीमित समय के लिए और कभी-कभी पानी आता है, उसके लिए तो छोटे बर्तनों में पानी रखना ठीक है। ठीक इसी तरह ऐसा नहीं है, कि वेदों मे कही गई बातें उपयुक्त नहीं हैं।

जिसे परमात्मा तत्त्व प्राप्त हो गया, वेदों के सकाम कर्म उसे नहीं बाँधते। विकार भी आभूषण हैं, वेदों के सारे मन्त्र ऋषियों को नहीं चाहिए। फिर भी भगवान ने दिए, ताकि समय पर इनका सदुपयोग किया जा सके। इतिहास में आवश्यकतानुसार वेद मन्त्रों का सदुपयोग करने के बहुत से उदाहरण मिलते हैं।

जिस प्रकार भागवत में गोकर्ण एवं धुन्धुकारी की कथा हम सब सुनते हैं कि किस तरह से धुन्धुकारी का कल्याण हुआ। श्रृङ्गी ऋषि ने श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजा दशरथ से पुत्र प्राप्ति हेतु पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। वशिष्ठ जी के आश्रम में, कौशिक राजा द्वारा उत्पात के पश्चात नन्दिनी के प्रभाव से वशिष्ठ ऋषि ने उसकी सेना को समाप्त किया । कर्दम ऋषि ने वेदों के मन्त्रों से देवहूति को यौवन प्रदान किया और सारे भोगों सहित नौ लोकों में भ्रमण करवाया। आवश्यकता होने पर च्यवन ऋषि ने अश्विनी कुमारों को बुलाया और च्यवनप्राश का अविष्कार हुआ। **वेदों के भोग आवश्यकतानुसार कल्याणार्थ हैं, न कि सकाम भोगों में लिप्त रहने के लिए।**

2.47

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः(र्), मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥2.47॥

कर्तव्य-कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, फलों में कभी नहीं। (अतः तू) कर्मफल का हेतु (भी) मत बन (और) तेरी कर्म न करने में (भी) आसक्ति न हो।

विवेचन - श्रीभगवान गीता जी के प्रसिद्ध श्लोक का वाचन करते हैं। कुछ श्लोक ऐसे होते हैं जिनमें हमें एक सूक्ति मिलती है परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता का यह एकमात्र श्लोक है, जिसके चारों चरण स्वतन्त्र एवं पूर्ण अर्थ वाले चार सूत्र हैं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते - कर्म करने में तेरा अधिकार है।
मा फलेषु कदाचन - फल में कभी भी नहीं।
मा कर्मफलहेतुर्भूः - तू कर्मों के फल का हेतु न हो।
मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि - कर्म करने में तेरी आसक्ति भी न हो।

रामचरित मानस में अयोध्याकाण्ड में भगवान ने अयोध्या वासियों को सन्देश दिया -

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।

हाथी का बल बहुत अधिक है। कुत्ते की घ्राण शक्ति अत्यधिक है। चील की दृष्टि अपार है। शेर के पास ग़ज़ब की ताकत है। सर्प के पास ग़ज़ब का जहर है। मनुष्य एकमात्र ऐसा है जो इन सब पर नियन्त्रण कर सकता है। इन सबकी भोग योनियाँ हैं। मनुष्य कर्म योनि में है।

विस्तार से इस श्लोक की चर्चा अगले सत्र में अवश्य होगी।

इसके साथ ही आज के विवेचन सत्र का समापन **हरि शरणं, हरि शरणं, हरि शरणं, हरि शरणं नाम सङ्कीर्तन के साथ हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।**

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - सुरेंद्र शर्मा जी

प्रश्न - हम कौन हैं? सबमें एक ही आत्मा है?

उत्तर - आकाश एक होने पर भी महाकाश, घटाकाश अलग-अलग हैं। इसी प्रकार आत्म तत्त्व सबमें एक होने पर भी, उसका उत्तरदायित्व (accountability) अलग-अलग होने से अलग-अलग दिखता है और उत्तरदायित्व में फँसा रहता है। **आत्मा चैतन्य है, हमारी बुद्धि जड़ है। जड़ बुद्धि से चैतन्य स्वरूप को समझ पाना कठिन है।** हम आरम्भ-अन्त, जन्म-मृत्यु को तो समझते हैं। अजर, अमर, अव्यक्त को नहीं समझ पाते। समझने की दृष्टि से उदहारण रखते हैं। न आदि, न अन्त कहते हैं। सारे उदाहरण लौकिक हैं। अलौकिक समझने की दृष्टि भगवान ने हमें नहीं दी है। **जिसने रसगुल्ला नहीं खाया, उसे स्वाद समझाया नहीं जा सकता।**

प्रश्नकर्ता - जेठा खुराना जी

प्रश्न - भगवान अर्जुन को मरने पर स्वर्ग और जीतने पर राज्य मिलने का कहते हैं, क्यों?

उत्तर - अर्जुन की वृत्ति भोगों में है। उन्होंने मोक्ष नहीं माँगा। द्वापर में स्वर्ग को बड़ा मानते थे। महाभारत काल में मोक्ष की बात नहीं करते थे इसलिए श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने समझाया कि पुण्यों से स्वर्ग तो मिल जाएगा, पर आवागमन का चक्र बना रहेगा। केवल भीष्म पितामह ने मोक्ष माँगा। पाण्डवों ने तो स्वर्ग माँगा।

प्रश्नकर्ता - माया सक्सेना जी

प्रश्न - आत्मा की निर्लिप्तता आकाश तत्त्व में क्यों नहीं है?

उत्तर - आकाश तत्त्व क्रियाहीन है। शेष चारों पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि क्रियाशील हैं।

प्रश्नकर्ता - पुष्पा जी

प्रश्न - निष्काम कर्म क्या है?

उत्तर - कर्म के बदले अच्छा या बुरा किसी फल की इच्छा नहीं है। कर्त्तव्य भाव से कर्म करना। बदले में कुछ नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता - पुष्पा जी

प्रश्न - भगवान ने अर्जुन को कौन सी निष्ठाएँ बताई हैं?

उत्तर- ज्ञानयोग और कर्मयोग दो निष्ठाएँ भगवान ने बताई हैं। कर्मयोग में भक्तियोग सम्मिलित है। ज्ञानयोग अलग है।

प्रश्नकर्ता - मन्जू अग्रवाल जी

प्रश्न - श्रीमद्भगवद्गीता जी में भगवान ने सबसे पवित्र वस्तु किसे कहा है?

उत्तर - ज्ञान सबसे पवित्र बताया है। ज्ञान आ गया, तो ज्ञान से बाकी सब पवित्र हो जाता है।

ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणां।

सारे अच्छे बुरे कर्म ज्ञान की अग्नि में तप जाते हैं। आत्मा भगवत स्वरूप है। वह तत्त्व नहीं है। आत्मा को पाया नहीं जा सकता। ज्ञान को पाया जा सकता है। आत्मा और परमात्मा तो पवित्रता से भी ऊपर की स्थिति है।

प्रश्नकर्ता- मधु जग्गी जी

प्रश्न - आत्मा कहाँ स्थित है?

उत्तर - आत्मा अति सूक्ष्म है। जो जितना सूक्ष्म है, वह उतना ही व्यापक है। तार में बिजली कहाँ स्थित है? सर्वत्र पूरे तार में है। ऐसे ही आत्मा शरीर में सर्वत्र स्थित है।

प्रश्नकर्ता - कान्ता जी

प्रश्न - लेन - देन व्यवहार का फल, इसे स्पष्ट कीजिए? पानी पिलाने का भी फल मिलेगा, ऐसा कैसे?

उत्तर - कर्तापन के अभिमान से पानी पिलाया तो हिसाब बाकी रह गया। कर्त्तव्य कर्म समझकर पानी पानी पिलाया, तो हिसाब नहीं रहा।

भगवान कहते हैं-

सुखदुःख समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

पानी पूछूँ तो अच्छा मानेंगे। पानी नहीं पूछूँ तो बुरा मानेंगे। यह वृत्ति है। चेतन मन सोचकर करता है। **अवचेतन मन वृत्ति के अनुसार करता है।**
इसी वृत्ति से कर्म चलते हैं। इसी से कर्म बन्धन होता है।

प्रश्नकर्ता- चन्द्रकान्त जी

प्रश्न - पिण्डोदक क्रिया के बारे में स्पष्ट कीजिए?

उत्तर - पिछले जन्म की सन्तान पिण्डोदक करती है, तो उससे आपको बल मिलता है। भले ही इससे आप अधिक प्रभावित न होते हों। किसी ऐसी योनि में जन्म लेने पर, जहाँ खान पान अभावग्रस्त या कष्टपूर्ण हो, उन पूर्वजों के लिए तो पिण्डोदक क्रिया

ही साधनबल है। पितृ श्राद्धकर्म से प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं, या तो उनकी तृप्ति होगी, या वे प्रसन्न होकर आशीर्वाद देंगे। दोनों ही दृष्टि से कर्त्तव्य भाव समझकर श्राद्धकर्म किए जाने चाहियें। पितृलोक से गिरने का अर्थ है, पितृलोक से वापस पृथ्वी पर आना।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||